प्रथम अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त नारी संवेदना

भारत के अद्धनारीश्वर परिकल्पना के अनुसार शृंखलाकृति ने अपने सिद्धांत के दो हिस्सों को नारी और पुरुष की संज्ञा दी थी। नारी और पुरुष समान और परस्पर पूरक है। नर-नारी संबंधों के मूलभूत तत्व के तहत नारी के बिना पुरुष के या पुरुष के बिना नारी का अस्तित्व अभूरा रहेगा। नर-नारी के पूर्ण सहयोग एवं समन्वय से ही सृष्टि कार्य सुचारु रूप में संपन्न होता है। इस संदर्भ में आशारानी द्वारा का मत सार्थक है, “पुरुष को प्रकृति ने बल अधिक दिया है तो स्त्री को दृढ़ता और शरीर सौन्दर्य अधिक। पुरुष संसार में जोश और साहस भरने के लिए बना है तो स्त्री घेर मोर चरित्र सिकाने के लिए, कहर और प्रेम भरसाने के लिए। दोनों ही भिन्न प्रकृति से ही परस्पर पूरकता और जीवन की पूर्णता संभव है।” नर-नारी की पूरकता पर याज्ञवल्क्य का मत भी उल्लेखनीय है, “जिस तरह
चने अथवा सीप का आधा दल दूसरे मिलकर पूर्ण होता है उसी प्रकार पुरुष के सामने का खाली आकाश नारी के साथ मिलने से पूर्ण होता है।”

मानव जाति की सभ्यता, संस्कृति एवं सौन्दर्य के विकास की प्रेरणा भी नारी ने दी है। सृष्टि के प्रारंभ में ही नारी को पूजा एवं सम्माननीय हैसियत दी गयी थी। यत्रनायकस्तु पूजन्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः में नारी का भव्य स्वरूप द्रष्टव्य है। धर्मशास्त्र में नारी मानवता के उत्कृष्ट और स्वच्छ जीवन प्रवाह का परिचालक है। अद्वैगीनी के पद पर कार्यरत नारी पुरुषों के समान दर्ज के अधिकारी एवं सहधर्मिणी की भूमिका सफलतापूर्वक अदा करती है। नारी की सुधनन्तन्त्र शक्ति से ही मध्यकाल में गृहस्थायी की नींव डाली गयी। इस दौरान परिवार और समाज का ढौंचा भी निर्धारित किया गया।

यहाँ डॉ. जयश्री गावित का मत उल्लेखनीय है, “संसार का सारा चक्र उसीके हर्द - गिर्द धूमता नज़र आता है। कभी जन्मदात्री, पोषणकर्ता माता के रूप में, तो कभी सेवक की अज्ञात धारावाली भागिनी के रूप में तो कभी अखंड सेवावर्ती के रूप में तो कभी निस्वार्थ प्रेम करनेवाली सहेजी, सेविका के रूप में तो कभी माता-पिता को बेटा कहकर अपने बच्चों के समान प्रेम करनेवाली नारी विद्याता की अद्वैतीय अप्रतिम निर्माती मानी जाती है।”

संसार की सुधवस्था नारी के हत्तक्षेप से ही फल-फूल रहा है।

1.1 भारतीय नारी

परिवार का समारंभ नर-नारी के प्रेमपूर्ण समन्वय से हुआ।
नारी प्रेम, करुणा एवं आत्मसमर्पण का मूर्तरूप है। किन्तु पुरुष इसी समर्पण भावना को उसकी दुर्बलता मानकर विवाह प्रथा में उसे कठौळ पाबंदियों से बांधने की कोशिश की। उनसे शायद लगभग नरी की गणना केवल भोगारूप में हुई। इस समय में पद्म प्रथा, सती प्रथा, वालविवाह अनमेल विवाह, दहेज प्रथा आदि कुप्रथाओं ने रूढ़ियों का रूप धारण कर लिया। इस माहौल में विधवा पति के साथ सती होने को बाध्य थी। इस काल में स्त्री शिक्षा से पूर्णतः वंचित रही। इत्यादि सहसहिता हेतु मानी जाती थी। यहाँ नरी घर और बाहर अपने अधिकारों से पूर्णतः विमुक्त थी। इसी दौरान समाज सुधारकों ने भी स्त्री-शिक्षा पर पर्याप्त बल दिया। इस संदर्भ में शैली रस्तेगी का मत उचित है, “वैदिक काल में भारतीय समाज में नरी का सशक्त व्यक्तित्व सर्वान्त दृष्टिगत होता है, किन्तु उसकी दशा उत्तरोत्तर हीन होती चली जाती है। बीज्ञकाल में अनेक स्त्रियाँ निर्वाण की खोज में भिक्षूणियाँ बनीं पर सामाजिक क्षेत्र में उनकी स्थिति भी उत्तरोत्तर गिरती जा रही थी। मध्ययुग तक पहुँचे-पहुँचे स्त्री बिलकुल पंग हो गई थी।” ॥ पुरुष प्रधान तथा पूंजीवादी समाज में नरी प्राचीन परंपराओं और रूढ़ियों पालने का बाध्य थी। निरक्षरता और आर्थिक पराधीनता उसे निरंतर सताती थी। किन्तु आज नारी शिक्षा के बल पर अपनी अस्मिता बनाये रखने में सक्षम हुई। हिन्दी उपन्यास साहित्य इसी परिवर्तित नारी जीवन को निम्नलिखित कालखंडों द्वारा दर्शाया है:-
1.2 पूर्वप्रेमचन्द युगीन हिंदी उपन्यासों में नारी

पूर्वप्रेमचन्द युगीन उपन्यासों ने नारी जीवन और नारी के मनोभावों
के रहस्योद्घाटन में अहम भूमिका निभायी। सामाजिक युग में प्रचलित
दृष्टिकोण, अनमेल विवाह, विधवा विवाह का निषेध, आदि कुछ विषयों का
विवेचन भी इस काल के उपन्यासों में परिलक्षित है। भारतीय नारी के
प्रभावशाली एवं सार्थक रूप की अभिव्यक्ति प्रारंभिक हिंदी उपन्यासों में
परिलक्षित हुई। युगीन परिस्थितियों के अनुरूप नारी जीवन के चहमुखी
पक्षों को उपन्यास में ठालने का प्रयास हुआ। समसामयिक युग की समस्याओं
का यथातथ्य उद्घाटन पूर्वप्रेमचन्द पूर्व युग के उपन्यासों की खासियत है।

लाला श्रीनवासदास के ‘परिक्षा गुरु’ में नारी का सनातन रूप उपलब्ध है।
इस संदर्भ में डॉ. अपर्णा पाटिल का मत उचित है, “परिक्षा गुरु
उपन्यास के मदन मोहन की पत्नी सती-साधी है, पति ही उसका देवता
है।” ऐंधारी और तिलसमी उपन्यासों में नारी का मध्ययुगीन भोग-
विलासित स्वरूप की अवधारणा हुई। इस युग में वेश्यावृत्ति के उत्कर्ष का
प्रयास द्वित्य है। इस संदर्भ में डॉ. जयश्री गावत का कथन समीचीन है,
“तिलसम - ऐंधारी उपन्यासों में नारी पात्र कठपुतली मात्र है। नारी का
कोई स्वतंत्र अस्तित्व दिखाई नहीं देता। वह पुरुषों के मनोरंजन का साधन
बनी थी। वह एक उपयोग की वस्तु बन गई।” लज्जाराम कृत ‘सुशीला
विधवा’; गोपाल राम गहमरी के ‘सास पतोहू’; कार्तिक प्रसाद खन्नी के
‘दलित कुसुम’ नारी जीवन की दुर्दशा का परिचय है। ‘सुशीला विधवा’ की सुशीला के शब्दों में, "पति के मरने पर सबसे बड़ा कठिनाई था कि उसकी चिता में भस्म होकर पति का साथ दे परन्तु आजकल ऐसा जमाना नहीं रहा। इसलिए जब तक जाए सदा ब्रह्मचर्य ब्रत का पालन करनेवाली विधवा मरने पर स्वर्ग में पति को पाती है और फिर दम्पति का कभी साथ नहीं छूटता।"⁷ किशोरीलाल गोस्वामी ने ‘स्वर्गय कुसुम’ में देवदासी प्रथा की कठुआ आलोचना की है।

1.3 प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यासों में नारी संबंध

प्रेमचन्द युग हिंदी उपन्यास का उत्कर्ष काल है। प्रेमचन्द युगीन नारी संबंध में रुढ़ियों का जबरदस्त प्रभाव परिलक्षित है। इत्यादि नारी की हालत गिरी हुई थी। कन्या का जन्म ही परिवार में शोक का कारण बना। वालबिवाह का बोलबाला था। युवावस्था में भी नारियों को धैर्य का समान करना पड़ा। विधवा नारी की दुर्दशा का अनावरण प्रेमचन्द के ‘वरदान’; ‘प्रतिज्ञा’ में उपलब्ध है। इस युग में विधवा नारी पुनर्विवाह से चंचल थी। विधवा स्त्री अपमानित एवं लांछित जीवन बिताने को बाध्य थी। यहाँ डॉ. जयश्री गांधी का मत समीचीन है, "प्रेमचन्द के उपन्यासों की नारियाँ सती साधी हैं तो सार्वजनिक की भी हैं। कुछ सामाजिक विषयों के पीड़ित हैं तो कुछ कमजोर और विद्रोही भी हैं।"⁸ प्रसाद के ‘हदस
का कॉटा'; चन्द्र शेखर शास्त्री के ‘विधवा के पत्र'; चतुर सेन शास्त्री के ‘आलम दाह' और ‘अमर अभिलाप्ता' विधवा नारी की दुःखशा का सूचक है।

दहेज प्रथा के नाने नारी को अनमल विवाह का शिकार बनना पड़ा है। नारी वैवाहिक जिन्दगी के विसंगति से ज्ञात वेशावृत्ति की ओर बढ़ती है।

यशपाल की ‘दिव्या' बौद्ध संघ में प्रवेश निषेध से वेशावृत्ति स्वीकारने में मजबूर नारी पात्र है। इस संदर्भ में आचार्य डॉ. हरिशंकर दुबे का मत समीचीन है, "प्रेमचन्द ने विधवाओं, वेश्याओं, परिवर्तिताओं, अनमल विवाह की पीड़ा होली नारियों की पीड़ा को बाणी दी।" दहेज प्रथा के हुएरिति का सूक्ष्म अवलोकन भी इस युग के उपन्यासों में प्राप्त है। प्रेमचन्द युगीन उपन्यास नारी के आधिक पक्ष पर भी सरसरी वृक्ष डाली गयी है। इस युग में स्त्री शिक्षा के तहत जागृत हुई। नारी सार्वजनिक क्षेत्र में पुरुष के समक्ष स्थान की अधिकारिणी बनी। प्रेमचन्द युगीन अधिकांश नारी पात्र अन्याय एवं अत्याचार के विरोध करने में सक्षम हुई। इसी दौरान नारी स्वायत्तशासन की ओर अग्रसर हुई। सारतः प्रेमचन्द युगीन उपन्यास के नारी पात्र समाज में पुरुषों की प्रधानता को चुनौती देती है।

1.4 प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी संबंधन

प्रेमचन्दोत्तर युग हिन्दी उपन्यास का उत्कृष्ट काल है। इस काल के हिन्दी उपन्यासों में नये प्रयोगों तथा परिवर्तन का सम्पन्न परिपाक दृष्टिगोचर
हुआ। इस युग के उपन्यास मार्क्सवाद और फ्राइड्रिक फ्राइडरिक मार्क्सवाद से सर्वाधिक प्रभावित है। जैनेन्द्रकुमार, अजेय, भैरवप्रसाद गुप्त फ्राइडेटिय फ्राइडरिक मार्क्सवाद के काम, अचेतन एवं व्यापक सिद्धांतों पर बल दिये हैं। स्त्री-पुरुष संबंधों की नयी व्याख्या तथा नैतिकता के नवीन मानदंडों का निर्धारण भी इस युग के उपन्यासों में उपलब्ध है। इस काल में व्यक्तिवादी उपन्यासों का श्रीमण प्रयोग हुआ। इस संदर्भ में डॉ. जयश्री गांवत का मत समीचित है, “सन् १९६० के बाद हिन्दी उपन्यास का मुख्य विषय नारी मन की उथल-पथल और स्त्री-पुरुष के प्रेम के आकर्षण की समस्या रहा है। इसके अलावा नारी की वैम्यन्तिक और आधिक स्वतंत्रता का सबल समर्थन होने लगा।”\(^{30}\) आलोच्य कालीन उपन्यास में नारी पात्रों की परिकल्पना में अधिकाधिक जागरूकता एवं प्रमाणितीति हुई। इस काल के उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक पक्ष प्रवकल रहा। यहाँ डॉ. जयश्री गांवत का मत उचित है, “हिन्दी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का प्रारंभ जैनेन्द्र के ‘परख’ और ‘सुनिता’ उपन्यासों से होता है। जैनेन्द्र ने सबसे पहले रुढ़िवादी शृंखलाओं और वंधी हुई परिस्थितियों से मुक्त होकर नारी मन की परख की। इनके समस्त नारी पात्र मानसिक दंड में भरे हुए हैं।”\(^{31}\) नारी की स्वतंत्र, स्वेच्छाचारी एवं मुक्त-कामी स्वरूप की सटीक अभिव्यक्ति युगीन उपन्यास की खासियत है। यहाँ पुरुषों के समकक्ष कार्यरत नारी की सटीक अवधारणा भी हुई है। इस संदर्भ में डॉ. गणेश दास का मत सार्थक है, “उसमें उनकी ख्रीडा, आक्रोश, विद्रोह सभी भावों
की अभिव्यक्ति है। वह पुरुष की सीमाओं का अतिक्रमण करना चाहती है।”१२

प्रेमचन्दोत्तर कालीन उपन्यास नवीन स्त्री-पुरुष संबन्धों के सूक्ष्म आकलन से आत्मिकता है। यशपाल के ‘दादा कामरेड’ और अशक के,
‘गिरती दिवारे’ में स्वच्छन्द प्रेम का समर्थन हुआ है। प्रेम विवाह एवं मुक्त काम संबन्धों का प्रश्न जैनेन्द्र के ‘सुनिता’ और ‘त्याग पत्र’ तथा यशपाल के ‘देशद्रोही’ में प्राप्त है। इस संदर्भ में डॉ. जयश्री गांधी का मत समीचीन है, “प्रेमचन्दोत्तर कालीन उपन्यासकारों का ध्यान अविवाहिता नारी के प्रेम की ओर विशेष रूप से गया है।”१३ यहाँ विवाह केवल अर्थ
केन्द्रित सिद्ध हुए हैं। घनश्याम भूतड़ा के शब्दों में, “प्रेम या विवाह के
संबन्धों के निर्धारण में आज पारिवारिक मर्यादा, सामाजिक बन्धन या
धार्मिक-नैतिक की भूमिका नगण्य-सी हो गई है। आज के युग में सारे
संबन्ध अर्थ-केन्द्रित हो चले हैं।”१४ शिश्न्न के तेज़ रफ्तार से नारी अपने
अधिकारों के प्रति जागृत हुई। राजनीतिक क्षेत्र में भी नारी की सक्रिय
भागीदारी का समर्थन लक्षित हुआ। नारी स्वतंत्र चेतना के संग अधिकार
एवं दायित्व का समृद्ध अधिकारिणी बनी। सारां: इस युग की नारी पात्र
शोषण के पिछलफाल विद्रोह जताने में सक्षम हुई।
1.5 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी

स्वातंत्र्योत्तर नये परिवेश में स्त्रियों की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। नारी की सामाजिक एवं आर्थिक हैसियत में व्यापक घुमाव लक्षित हुआ। इस काल में नारी शिक्षा ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। मध्ययुगीन सुशिक्षित नारी नौकर के क्षेत्र में पदार्पण करने लगी। औद्योगिक करण और नवीन विचारधारा ने नारी की आर्थिक स्वायत्तता में बढ़ोतरी प्रदान की। फलतः नारी के आत्मविश्वास, कार्यक्षमता और बौद्धिक स्तर में भी गणनीय वृद्धि होकर आयी। पारिवारिक अवधारणा में भी नारी की सुधार लक्षित हुआ। देश में स्वतंत्र संविधान का निर्माण और शिक्षा के प्रचार ने नारी को अपने अधिकारों पर जागृति जताई। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास भारतीय नारी की आर्थिक, सामाजिक तथा पारिवारिक स्थिति के विवेचन से आलोचित है। स्वातंत्र्योत्तर कालिन उपन्यास नैतिक-अनैतिक, सामाजिक बंधन, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक अधिकारों के प्रति विचारवाद नारी का सटीक आकलन से भी संपृक्त है। आलोच्य कालीन उपन्यास में नारी प्रगति के निम्नलिखित आयास हुए हैं।

1.5.1 दहेज प्रथा

शास्त्रों में विवाह को कन्या के पिता द्वारा आभूषण से परिपूर्ण कन्या को वर के हाथों सोंपने की प्रथम दी है। इस संदर्भ में कन्या का पिता
वर पक्ष को स्वेच्छा से भेंट अर्पण करते थे। कालान्तर में यह प्रथा दहेज के रूप में परिणत हुई। वर की शिक्षा के अनुरूप दहेज माँगने की प्रवृत्ति में बढ़ा आया। ससुराल में दहेज के मार्फत नारी का उत्पीड़न भी जारी रहा। अशिक्षा, बेकारी, भौतिकवाद की बढ़ोतरी, आदि दहेज उत्पीड़न के मुख्य कारण बने। दान-दहेज के तहत भारतीय नारी अभिशापपूर्ण जीवन बिताने को विवश हुई। दहेज प्रथा ने संपूर्ण देश में एक गंभीर समस्या का रूप धारण कर दिया। इस संदर्भ में आचार्य डॉं हरिशंकर दुबे का मत समीचीन है, “अंधानुकरण की वृत्ति ने ही समाज में दहेज को प्रोत्साहित किया है। आज यह स्टेटस सिम्बालिक बन गया है।”

1.5.2 अनमेल विवाह

चिरकाल से विवाह प्रथा को महत्वपूर्ण पद प्राप्त था। नये उभरते परिवेश में वैवाहिक संस्कारों में भी वांछित बदलाव हुआ। इधर अनमेल विवाह का श्रीगणेश भी हुआ। आज विवाह के दौरान खानादान एवं संस्कार को नगण्य स्थान दिया जाता है। चमड़े एवं तमड़े विवाह का एकमात्र साधन रह गया। भारतीय समाज में भी अनमेल विवाह से नारी त्रासदायक जीवन बिताने को बाध्य बनी। इस संदर्भ में बबनराव बोडके का मत उचित है, “भारतीय समाज में अनमेल विवाह की परिणति प्रायः दुःखद ही होती है। ऐसी विवाह में स्त्री का असंतोष बाहर खुलकर व्यक्त
नहीं हो पाता और वह अंदर ही अंदर घुटनी रहती है। उसका परिवारिक एवं सामाजिक जीवन विशाल हो जाता है।”\(^{16}\) आज विवाह एक व्यवसायिक प्रक्रिया की सूरत धारण करने लगी। आर्थिक एवं सामाजिक हैसियत के तहत किशोर नारी को अपेक्षा उम्रवाले पुरुष से व्याह करना पड़ा। माता-पिता और परिवारवालों की जोर-जबरदस्ती से भी नारी को बूढ़ा या विधुर को व्याहना पड़ता है। डॉ. चन्द्रनाथ बोड़के के शब्दों में, “बूढ़े आदमी से बोड़से की शादी जैसी घटनाएँ आज भी आम है। धर्म आदि कुछ ऐसी समस्याएँ मुंह बाये सिर पर इस तरह खड़ी हैं, जिनके कारण माँ-बाप बच्चियाँ की शादी बूढ़ों से कर देते हैं।”\(^{16}\) अनमेल विवाह से नारी जीवन में तनाव की स्थिति उभर आती है। अपने वैवाहिक जीवन की विकटतमा एवं ऊँचाहट से निर्भय पाने हेतु नारी शराब पीना, नाचना, भटकना आदि अनैतिक आचरण अपनाती है। झूठ विवाहिता नारी पति की छत-छाया में रहने के बावजूद भी परपुरृष की ओर आकृष्ट होती है। अनमेल विवाह नारी की योग्योता भावनाओं पर कठोर आघात पहुँचाती है। इस संदर्भ में डॉ. छायावादी घोरपड़े का मत समीचीन है, “अनमेल-विवाह के कारण नारी की योग्योता भावनाएँ अतुल रहती हैं। परिणामतः ऐसी नारी परपुरृष से प्रेम और योग-संबंध स्थापित करती है। हमारी विवाह-पद्धति का एक बड़ा दोष है - अनमेल विवाह।”\(^{16}\) अनमेल विवाह पति-पत्नी को ढलनुसंद क्षेत्र में धौलेल देती है।
1.5.3 विधवा विवाह

विवाह व्यक्ति के जीवन में विशेष नियंत्रण की व्यवस्था रखती है। विवाहोपरान्त पति-पत्नी गृहस्थी शकट के संबंधक है। यहाँ विवाह माँ-चाप के इच्छानुसार किया जाता है। यहाँ वर के चुनाव में लड़की की इच्छा उपेक्षित है। इथर नारी को अधेड़ उम्र वाले या प्रौढ़ के साथ शादी करना पड़ा। किन्तु पति का असामाजिक वियोग पत्नी के लिए साक्षात् गम का धरोहर जताता है। उथर विधवा नारी को परिजनों से ताने-उलाहनों, अपमानों, प्रताड़नों एवं तिरस्कार झेलनी पड़ती है। इथर विधवा नारी समाज में अधिकतर दुःखी, अपमानित एवं बहिष्कृत प्राणी का रूप धारण करती है। इस संदर्भ में आचार्य डॉ. हरिशंकर दुबे का कथन सार्थक है, “भारतीय समाज में विधवा नारी की बड़ी बुरी गति है। सामाजिक व्यवस्था द्वारा विधवा नारी का बहुत शोषण किया गया है।”

प्राचीन काल से विधवा नारी पुनःविवाह से वंचि थी। व्यवस्था द्वारा उसका दिग्गज शोषण भी जारी रहा। विधवा नारी का चेहरा देखना तक अपशकुन माना जाता था। उन्हें किसी मंगलवार कार्य में प्रवेश भी निषिद्ध था। इन्हीं कुंठाओं एवं अत्याचारों के मार्गत विधवा नारी पति के साथ सती होने को विवश थी। श्रेष्ठ कृत्तिनित्ज्ञ चाणक्य के मतानुसार, “पति-स्त्री का परम देवता है। इसका सीधा-सा अर्थ हुआ जब देवता ही नहीं है तो स्त्री के जीने का क्या ओपिचय। महान हिन्दू धर्म विधवाओं को कानूनी रूप से तो नही
मगर सामाजिक रूप से घर निकाल देता है। उसके रहने-पहनने, खाने-पीने, उत्सव मनाने तक प्रतिबंध लग जाते हैं।” २० समाज के शक्तिशाली ताकतों द्वारा विधवा नारी का बहुमुखी शोषण ज़ारी है। यहाँ असहायता, तिरस्कार, उपहास एवं उपेक्षा विधवा नारी जीवन की नियति बनती है।

इस संदर्भ में डॉ. एम बंकेटेश्वर का मत समीचीन है, “भारतीय विधवा सदा से उपेक्षित और पीड़ित रही है, उसे सामान्य जीवन यापन की उपयुक्त सुविधाएँ भी परिवार और समाज से प्राप्त नहीं होती रही है।” २१

आधुनिक युग में विधवा नारी भी अपने अधिकारों के प्रति सजह हो रही है। इस सिलसिले में शिक्षा, नारी-जागरण, समाज सुधारकों के मुद्राव एवं नारी विषयक नये कानून ने विधवा नारी के सोच में अधिक जागरूकता जताई। यहाँ डॉ. कीर्ति मिश्रा का मत उचित है, “उसके बौद्धिक सोच में निरततर परिवर्तन दिखा रहा है यही कारण है कि आज की नारी समाज के संस्कारों एवं परंपराओं का तो निर्यात कर रही है मगर समाज की कुर्सियों एवं रूढ़ियों के प्रति उसमें अस्वीकार एवं आक्रोश की भावना जागृत हुई है।” २२ आज कानूनी स्तर पर विधवा नारी को पुनर्स्वाविक की अनुमति प्राप्त है। इधर पति की चिता के साथ जल मरनेवाली भारतीय सती नारी के आदर्श में बाँछित बदलाव लक्षित हुआ।
1.5.4 नारी मुक्ति आन्दोलन

संस्कृति के प्रारंभ में स्त्री गुरुकार्य की देखभाल में अपनी क्षमता खो देने को विवश थी। इस युग में स्त्री संतति करके अपने कबीले या जाति का अस्तित्व कायम रखने का साधन मात्र रह गयी। श्री सिमोन के मतानुसार, “वह मादा पशु की तरह अपनी शरीरिक सीमाओं में प्रजनन-क्षमता के कारण सदा केलिए केद कर दी गयी。”

समाज में जब शोषण, अन्याय, अत्याचार और दमन का कुचक्र तेज रफ्तार से हुआ तो शोषित, पीड़ित एवं दमित नारी भी प्रतिरोध खड़ा करने लगी। नारी मुक्ति आन्दोलन समाज की इस मनोवृत्ति की उपज है। सदियों से नारी पर लगाये गये अन्याय-अत्याचार का विरोध इस आन्दोलन के मूल में उत्स है। सदियों से नारी जीवन की बागडौर पुरुष ने संभाला था। नारी देवी, पली, माँ, दासी के रूप में घर की चहारदीवारी में बंधित थी। विवश, लाचार एवं कुंठित नारी अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत रही। यहाँ डॉ. जयश्री गावित की राय समीचीन है, “सामाजिक पराधीनता, पुरुष अधीनत्व, प्रचलित आदर्श, विश्वासों मान्यताओं - एवं मूल्यों के बंधन से नारी को मुक्त करने का प्रयास ही नारी-मुक्ति आन्दोलन है।” यहाँ नारी स्वतंत्र अस्तित्व की हिमायती रही और सदियों से पहलाई गुलामी की बेडियाँ ठोकने केलिए उदय भी हुई।
सन् १८६५ में ऐलिज़ाबेथ मिलर, लुसी स्टोन ने अमेरिका में नारी मुक्ति आन्दोलन की शुरुआत की। डॉ. शंकर प्रसाद के मतानुसार, "परिचालन में १६वीं शताब्दी में ही नारी मुक्ति आन्दोलन की शुरुआत हुई। स्त्री स्त्र्योंत्रता तथा समानता के लिए ही एक क्रांति शुरु हुई थी।" रवि परिचालन की नारी मुक्ति आन्दोलन ने भारतीय नारी मानस पर जबरदस्त असर डाला। यहाँ नारी मुक्ति आन्दोलन का वास्तविक सूत्रपात १६वीं सदी के आखिरी दशकों में हुई।

मनुस्मृति ने नारी की स्त्र्योंत्रता सीमित कर दी। यहाँ सुरक्षा हेतु नारी अपने अधिकार सीमित करते रहे। समाज की जबरदस्त रूढ़िगत व्यवस्था ने उसे पुरुष की दासी बनाया। यहाँ नारी मुक्ति आन्दोलन ने नारी को पुरुष के बराबर की प्रतिष्ठा देने में सहयोग दिया। इस संदर्भ में डॉ. शोभा वरेकर का मत समीचित है, "स्त्री मुक्ति का मतलब पुरुष वर्चस्व, पुरुष दर्प, पुरुष मानस की विकृत सोच से सभी की मुक्ति है न कि स्त्री-पुरुष संबंधों से उसकी मुक्ति।" नारी मुक्ति आन्दोलन समाज में पुरुष के शैक्षिक, मानसिक एवं सामाजिक वातावरण में नारी जीवन को टालने की रुपरेखा उद्धृत की। यहाँ नारी ने एक स्त्र्योंत्र, स्वरक्षित तथा स्वनिर्भर व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठा पायी है। शिक्षा, नौकरी, संस्थाओं एवं संघार माध्यमों ने नारी की सुपत्त चेतना जगाया। इद्रय बाहरी दुनिया से स्त्री का दृढ़ सरोकार स्वामानिक रूप से हुआ। आज नारी ने अपनी रुंच के
अनुमार वैयक्तिक जिन्दगी बिताने का सामर्थ्य आज़िज़ लान नहीं है। नारी मुक्ति आन्दोलन ने जीवन के हर क्षेत्र में नारी के समानाधिकार का पक्ष लिया। 

इस सन्दर्भ में डॉ. अमर ज्योति का कथन उल्लेखनीय है, “महिलाएँ अब किसी भी अर्थ में पुरुषों से दोहरे दर्ज की स्थिति में नहीं दीखाई देती। पुरुषों के समान आत्मनिर्भर रहना अब उनकी महत्त्वाकांक्षा है।” २५

1.5.5 नारी शिक्षा

शिक्षा सब धनों में श्रेष्ठ धन माना जाता है। शिक्षा मनुष्य व्यक्ति के सम्प्रभु विस्तार से जीवन के सार्थक सहयोग का क्षमता लब्ध करने का सफल साधन है। सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आधिकारिक पारंपरियाँ नारी को मात्र गृहनर्तक के लिए बाध्य करती थी। किन्तु स्वतंत्र भारत में संविधान के तहत नारी शिक्षा में उल्लेखनीय प्रगति हुई। राजा रामभवन राय, रमावर रानार्ड, श्रीमती पी.के. राय आदि समाज सुधारकों के विशेष प्रयास से स्वतंत्रता के पश्चात नारी शिक्षा के विकास में श्रीवृद्धि हुई। यहाँ सुशिक्षित महिलाओं द्वारा चलाये गये आन्दोलनों एवं निरंतर प्रयास से नारी शिक्षा को पर्याप्त प्रश्रय मिला। इसी प्रकार नारी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुई। सुशिक्षित नारी ने मन, वृद्धि और कर्म को सही दिशा में संचालन की क्षमता हासिल की।

आज्ञादोत्तर युग में शिक्षा के तेज़ रफ्तार से नारी घर की
चहारदीवारी लौंगने लगी। उसे जीवन के समग्र ज्ञान प्राप्ति का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस संदर्भ में डॉ. वनराव बोडके का मत सार्थक है, “शिक्षित नारी अपने अधिकारों के प्रति सजग है। वह राजनीति, विज्ञान, इतिहास, कला सभी क्षेत्रों का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहती है। संसार की हर गतिविधि से वह परिचित हो जाना चाहती है। क्योंकि वह भी सृष्टि का एक महत्वपूर्ण अंग है।”

शिक्षा ने नारी में आत्मसम्मान एवं आधिक आवश्यकता का भाव भर दिया। विवाह के क्षेत्र में भी शिक्षित एवं कमाने वाली नारी की माँग हुई। इसमें शिक्षित नारी अपने परिवार के भरण-पोषण में सफल सिद्ध हुए। आधुनिक युग में हर नारी शिक्षा एवं नौकरी को जीवन याद के साथ जोड़ने में प्रयासरत है। इस संदर्भ में सरला दुआ का कथन उचित है, “आधुनिक काल की नारी को गृहस्थी में फैल जाना चाहती है।... नारी के मानसिक विकास के लिए जितना घर का क्षेत्र आवश्यक है उतना ही बाह्य क्षेत्र भी। घर में रहकर वह अपनी प्रत्येक इच्छा की पूर्ति करती है, परन्तु फिर भी मानसिक क्षेत्र में पैर फेलाने का अवसर उसे घर की चहारदीवारी में प्राप्त नहीं होता।”

1.5.6 नौकरीपेशा नारी

घर का प्राचीर में कैद परंपरागत नारी संसार के खुले वातावरण से अपराधित थी। निम्नवर्गीय नारी जीवन संघर्ष, परिप्रेक्त और मानसिक
तथा शरीरिक पीड़ा से प्रणीत रहा। यहाँ नारी पति का दुर्श्वभाव एवं निम्नगत सामाजिक तथा आधिक शोषण का आखेट बनी। किन्तु नारी शिक्षा के बलबूते आधिक स्वतंत्रता हासिल की। इस संदर्भ में आचार्य डॉ. हरिशंकर दुबे का मत समीचीन है, “समय परिवर्तन और बदलते सामाजिक परिवेश में महिलाओं के कार्यक्षेत्र में भी परिवर्तन आता जा रहा है। आधिक सुविधा की वृद्धि से समाज के पिछड़े वर्ग की महिलाएं तो बहुत समय से खंडों में, घरेलू नौकरानियों के रूप में फैक्ट्रियों और मजदूर के रूप में कार्य करती आ रही हैं, उसके साथ मध्यवर्ग और उच्च वर्ग की महिलायें भी घर से बाहर अपने परिवार की आधिक दशा सुधारने हेतु तेजी से कदम बढ़ाये चली जा रही है।”

तत्कालीन समाज में अर्थ का प्रभाव सर्वार्थ है। संयुक्त परिवार के टूटन तथा छोटे परिवार, सीमित आय एवं बढ़ती हुई आधिक मजबूतियों ने नारी को भी नौकरी करने को बाध्य बनाया। इसर नारी ने अपनी प्रतिभा, पद, प्रतिष्ठा के मार्फत आधिक स्वायत्त को प्रथम दिये। बढ़ती हुई महंगाई तथा भारती अमृत सुविधाओं को बढ़ाने के वास्ते विवाहिता नारी भी कामकाजी का पद ग्रहण की। आजकल नौकरी को विवाह के लिए एक अतिरिक्त योग्यता के रूप में स्वीकृति प्राप्त है। इस संदर्भ में नासिरा शर्मा का मत वाजिय है, “यह सदी वास्तव में महिला सदी है जिसमें औरत हर क्षेत्र में न केवल मर्द के संग कदम-से-कदम मिलाकर चली है, बल्कि
कुछ क्षेत्रों में मर्द के आगे निकलकर उसने इस तरक को साबित कर दिया कि मर्द और औरत के दिमाग में कोई फरक नहीं होता है।”33 नौकरी के तहत नारी जीवन और उनके मनोवैज्ञानिक में दुर्गति से परिवर्तन हुआ। इस तरह नर-नारी संबन्ध भी अर्थ के आधार पर निर्धारित हुआ। इस संदर्भ में डॉ. प्रमीला कपूर का मत सार्थक है, “आधुनिक युग में प्रेम स्वी-पुरुष के मध्य स्थायी भाव नहीं है। नारी विवाह से पूर्व ही भविष्यवाणी कर लेती है कि उसे किससे खिताबा लाभ होगा।”34 संप्रति नौकरी पेशा नारी विवाह में दो आत्माओं के पुनीत गठबंधन तक को नकारने लगी है।

1.5.7 नौकरी पेशा नारी की समस्याएँ

वैदिक युग में हर क्षेत्र में सम्माननीय तथा समानाधिकारी हस्तिन की थी। आधुनिक युग में नारी सुशिक्षित होकर ऊँचे ओहदों में विराजमान है। किन्तु यहाँ उसे बहुमुखी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। घर और बाहर उससे ऊँची अपेक्षायें रखती है। नौकरी के बावजूद उसे गृहकार्य परंपरागत डंग से निपटाना पड़ता है। यहाँ सामाजिक दायित्वों को निभाने में अधिक व्यस्तता उसकी स्वतंत्रता में बाधा डालती है। व्यस्त जीवन, घर में बच्चों की दुर्देशा, परिवारवालों की नकारात्मक दृष्टि आदि नौकरी पेशा नारी के शरीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर आघात डालते हैं। नौकरी की वजह से कुछ नारियों को अधिवाहिता रहना
पड़ता है। घर में उसे उपेक्षित वृद्ध माँ-बाप का दांवित्व भी ढोना पड़ता है। नौकरी के तहत नारी लंबे अरसे तक घर से दूर रहने को भी विवश है। इधर कामकाजी नारी अधिकारियों एवं नौकरशाही के शोषण का शिकार बनती है। कामकाजी नारी पति का अविश्वास, वृद्ध सास-ससुर की निर्तन सेवा, बच्चों से अलगाव और स्वस्थ्य संबंधी असुविधा से भी उद्रूम्ग है। इस संदर्भ में डॉ. बंदना सोपानराव मोहिते का मत उल्लेखनीय है, “नारी के लिए नौकरी का क्षेत्र असुविधाता है। ज्यादा मात्रा में उसे बेड़जुल ही कराया जाता है। उसके व्यक्तिगत जीवन में झूका जाता है। स्पष्ट है कि नौकरी पेशा नारी का जीवन जटिल और डॉकाडोल हुआ दिखाई देता है।”

1.5.8 नारी अस्मिता की तलाश

अस्मिता में अस्तित्व बोध की प्रधानता है। अर्थविद सहज समांतर शब्दकोश में अस्मिता के लिए ‘आल्मज्जान’; ‘वैयक्तिकता’; ‘व्यक्ति’ आदि अर्थ दिया गया है।”33 दर्शन पाण्डे के मतानुसार, “अस्मिता अर्थात् पहचान। जिस प्रकार संसार की प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अलग पहचान तथा अस्मिता होती है, जो उसके व्यक्तिगत रूप को प्रकट करती है। इसी पहचान के कारण व्यक्ति अपने आचार-विचार प्रकट करता है।”34 लोकभारती वृद्ध प्रामाणिक हिंदी कोश में अस्मिता के लिए ‘गर्व’; ‘अभिमान’; ‘मोह’ अर्थ दिये गये है।
परंपरा ने नारी को प्रेम की प्रतिमूर्ति तथा करुणामयी रूप में दर्शाया है। रविन्द्रनाथ जी ने नारी के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते हुए कहा है, “नारी भगवान की ही अद्भूत कृति नहीं है, वरन् मानवों को भी अद्भूत सृष्टि है। मनुष्य निरंतर अपने अंतर्गत से नारी को सौन्दर्य की विभूति से विभूषित करता हैं। कविगण स्वर्णिम कलापना के धागों में उसके लिए जाल-सा बुनने रहते हैं। चित्रकार उसके स्वरूप को उसके बाह्य-सौन्दर्य को अमरत्व प्रदान करते रहते हैं। मानव हृदय की वासना ने सदैव नारी योग्य को एक्षर्य प्रदान किया है। नारी अद्भुत नारी है और अद्भुत स्खन।”

रविन्द्रनाथ जी का दावा नहीं है कि समाज आदर्श है। इस संदर्भ में डॉ. शीला राजवर का मत समीचीन है, “अब तक के विकास क्रम में नारी पुरुष के समान हैं। उसके दूरे, दानवी, आदर्श, आदर्शीन, पूज्य और निदर्शी समी रूप पुरुष रूपी धूरी के चाहुआरे धूमने वाले रूप है।”

इसी दौरान पुरुष ने अपनी समस्त प्रभुत्वता में नारी को बाधा मानकर उसे घर का प्राचीर में जड़ दिया।

स्वतंत्रता के पश्चात् समस्त परिवेश में परिवर्तन जात हुआ। वैचारिक धरातल पर जागृत नारी में पुरुष के समान अधिकार की कामना जागृत हुई। इस सिलसिले में नारी के परंपरागत दृष्टिकोण में बदलाव
दृष्टगोचर हुआ। परंपरा से नारी को अर्थात् महिला का पद प्राप्त था। किन्तु समय के फेरे के साथ पुरुष की अनुगमिनी का तेवर नारी अपनी अस्मिता में बाध्य समझने लगी। यहाँ नारी अपनी स्वतंत्र पहचान और महत्ता की महत्वाकंप्लेक्स बनी। शिक्षा और अर्थिक स्वाभाविक से नारी के चिरकाल आदर्श छिड़ में भी बदलाव हुआ। कला एवं माध्यमों के क्षेत्र में भी नारी अपनी प्रतिष्ठा हासिल की। इस संदर्भ में डॉ. सुधा सिंह का मत सार्थक है, “आधुनिक जन-जीवन में नारी सुशिक्षित होकर अपनी अस्मिता और अधिकारों के प्रति जागरूक है। वह परंपरागत चरणों की दासी न होकर वर्तमान स्पेस और कम्यूनिटी दौर में बराबर की सहायत्री है।”38 इत्यादि नारी सुधिगत नारी-विरोधी संहिताओं को लांघकर पुरुष के समक्ष पद की अधिकारिणी सिद्ध हुई है।

1.5.9 नए नैतिक प्रतिमान

नैतिक मूल्य समाज की राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, पारिवारिक संस्थाओं से संबंधित विविध नियमों, लोक मर्यादाओं एवं परंपराओं का समन्वित रूप है। समाज में समयानुकूल परिवर्तन के तहत मूल्य संबंधी मर्यादाओं और परंपराओं में भी बदलाव अवश्य हुआ। नैतिकता संबंधी नये-नये प्रतिमानों का आविर्भाव स्वाभाविक रूप में हुआ। इस संदर्भ में डॉ. सुखदेव शुक्ल का मत उचित है, “हमारे समाज की नैतिक व्यवस्था की
यह विशेषता रही है कि उसने रुढ़िवादों की जड़ें को जब-जब तोड़कर अपना विकास-पथ निर्वांच सकाये रखा है।”39 आधुनिक युग में फ्रायड़ और मार्क्स ने मानव जीवन की परंपरागत नैतिक मापदंडों को जड़ से उखाड़ने की तरकीब की है। फलता : नैतिक मूल्यों में हर-फरेर लक्षित हुआ। इस घर की चहारदीवारी में केवल पातिब्रात्त को परम धर्म माननेवाली नारी आधिक स्वतंत्रता की ओर प्रवृत्त हुई। यहाँ स्वी-पुरुष समानता की मांग भी प्रचल होने लगी। नारी आधिक आत्मनिर्भरता के तहत स्वेच्छाचारी सिद्ध हुई। आत्मनिर्भरता ने वेदान्तिक संबंधो में दरार पेड़ा कर दिया। यहाँ नारी सेक्स को प्रकृतिक आवश्यकता मानने लगी। वह स्वेच्छा से मनबाहे पुरुष के निर्वाचन की ओर उठत हुई। इस संदर्भ में छायादेवी घोरपड़े का मत समीचीन है, “आज के युग की नैतिक मूल्यों की उपेक्षा करने लगी है। प्रेम और यीन संबंधो में वह स्वच्छंदता एवं स्वेच्छाचार पूर्ण आचरण करने लगी है।”40 समसामयिक युग में नर-नारी के नैतिक-संबन्ध शिष्टतिल है।

1.5.10 बदलते स्वी-पुरुष संबन्ध एवं दाम्पत्य जीवन

सामान्यतः नारी स्वतंत्र व्यक्तित्व के आधिपत्य से बंधित है। वह समाज के जवरदस्त रुढ़ीवादी बंधन से जड़कर हुई है। इस नारी आधिक दृष्टि से पुरुष के अधीन रहने को मज़बूर हुई। यहाँ नारी घर-गृहस्थी के दमघोट वातावरण से रिहाई हेतु छटपटा रही है। इसी दौरान प्राचीन
सांस्कृतिक मान्यताओं का हवन और नवीन बंधन-विहीन नैतिकता का आविष्कार स्वाभाविक रूप में हुआ। इत्यादि नारी ‘स्व’ के बाह्य विस्तार की ओर उन्मुक्त होने लगी। सामाजिक, नैतिक मूल्यों से विद्रोही नारी में स्वामित्व को नकारने की प्रवृत्ति उद्भूत हुई। यहाँ आचार्य डॉ. हरिशंकर दुबे का मत समीचीन है, “आज की नारी अपनी स्वतंत्रता को सुरक्षित रखना जानती है। वह रूढ़िवादिता को नहीं शीर्षकर करती। इसी कारण वह जन्म जन्मांतर के पतिव्रता धर्म जैसी मान्यताओं को अब ठोकर मार रही है।”83 यहाँ नारी-पुरुष की वैचारिक संबंधना में टकराहट लक्षित हुआ। इस संदर्भ में नारी जीवन में दीर्घकालिक, घोर एउकार्यन, निराशा एवं कुंपा का इजाफा दृष्टिगोचर हुआ। अतः स्त्री-पुरुष संबंधों में शैक्षित्य का प्रादुर्भाष हुआ।

1.5.11 बदलते दाम्पत्य जीवन

पति-पत्नी का दाम्पत्य संबंध भारतीय धर्म और संस्कृति में सर्वाधिक ही पवित्रता तथा ब्रह्मा जीव संबंध के समक्ष का प्रश्न दिये थे। पति-पत्नी संबंध जन्म-जन्मांतर का पवित्र संबंध का माना जाता था। यहाँ विवाह की एकनिष्ठता एवं उसके निर्वाह पर विशेष बल मिला। नर-नारी के इतने पवित्र बंधन से पारिवारिक जीवन का शुभारंभ हुआ। इत्यादि पत्नी द्वारा पति को पर्याप्त आदर प्राप्त था तथा पत्नी घर-मृदुस्थि का भार
संभालती थी। किन्तु फिलहाल इस सनातनी विचार धारा में टूटन हुआ।
इसी दौरान वैज्ञानिक संबंधों में आमूल हर-फेर भी लक्षित हुआ। फलतः
परिवार में नारी को पति के बराबर अधिकारी का समर्थन हुआ।

सामाजिक युग में नारी अपने अस्तित्व के प्रति सचेत हुई। वह
अन्याय एवं अत्याचार के विरोधी बनी। इस समय में आचार्य डॉ. हरिशंकर
दुबे का कथन समीचीन है, “स्त्री-पुरुष की मानसिकता बहुत अधिक बदल
गई है। उनकी सोच अब पहले की तरह पारंपरिक नहीं रही। उनकी
वैचारिकता और संवेदना में टकराहट हो रही है। अतः स्त्री-पुरुष संबंधों में
उभरता ढूँढ़ गुन्थियों और ग्रंथियों को जन्म दे रहा है।” ५२ पति-पत्नी रूपी
आधार शिला पर परिवार का गढ़न संभव है। पति-पत्नी के प्रेम-पूर्ण
संबन्ध में परिवार की कमजोरता सिद्ध है। किन्तु आधुनिकीकरण, औद्घोषिक
विकास एवं तकनीकी शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने पति-पत्नी के पारंपरिक
संबंधों में मनमुदाय की स्थिति पैदा की। संप्रति दाम्पत्य जीवन की सम्पूर्णता
भावना में निदारण हुआ।

1.5.12 तलाक

सामाजिक युग में मानवीय संबंधना अत्यधिक विशाल एवं बहुमुखी
हो रही है। टोस यथार्थ के धरातल पर रहने के बावजूद मनुष्य में पारंपरिक
मूल्यों के प्रति मोह और नवीन मूल्यों के प्रति आकर्षण स्वाभाविकत: उपजा
है। यहाँ पाश्चात्य प्रभाव एवं शिक्षा से सजग नारी परंपरागत रूढ़ियों के खिलाफ पुरुष से समक्ष अधिकार प्राप्ति की ओर अग्रसर हुई। आर्थिक स्वायत्तता नारी के परंपरागत सोच में अदल-बदल लाया। पारस्परिक प्रेम, भावनाओं और विचारों की समान्तरमिता एवं परस्पर विश्वास पर आधारित दाम्पत्य जीवन में हर-फर निरंजन हुआ। यहाँ पातिल्बिक्ष और सतीत्व की भावना निष्पादन सिद्ध हुई। अपनी अभिव्यक्ति के प्रति जागृत नारी पुरुष की अनुभावित की हैसियत से समान अधिकारियों की मांग किया।

वर्तमान युग में शिक्षित नारी के व्यक्तित्व में अंह का सशक्त स्वरूप दर्शनीय है। आज नारी पति के विवाहेतर संबन्धों पर बेताब है। पति की इस स्वच्छायादी रूपे में नारी तलक करने को विवश है। यहाँ डॉ. किरण बाला अरोड़ा का मत उल्लेखनीय है, “स्त्री-पुरुष में परस्पर सामंजस्य की कमी होने से एक दूसरे को झोलने के बदले अगर अलग होकर सुधी रहना चाहते हैं तो तलक ऐसी स्थिति संभव बनाता है।” ५३ पति-पत्नी की एकुण्यता तथा समझौता वादी दृष्टिकोण की तिलांजली एवं प्रेमाभाव भी उसे तलक की ओर बढ़ाती है। पति में खोट है या वह धोखेबाज है या गिरा हुआ आदमी है तो नारी ऐसे पति से भी विवाह विच्छेद को हामी है। इस संदर्भ में डॉ. रोहिणी अग्रवाल का मत सार्थक है, “निसंदेह तलक लेना या देना किसी असहास परिस्थितियों का परिणाम होता है। वैधानिक दृष्टि से तलक पति-पत्नी के संबन्ध की इतिहास अवश्य कर देता है, उनके वैधानिक
जीवन की खट्टी मीठी यादों पर कूची नहीं फेर सकता... तलाकशुदा महिलाओं के मन में जहाँ प्रारंभ में पीड़ा, कटूता या असहायता का भाव प्रमुख होता है, वही वेदों से पतिमूह छोड़कर चली आनेवाली महिलाओं में होता है आत्मविश्वास दूर डूर और संघर्ष करने का भाव।”

पहले समाज में तलाकशुदा नारी अपमानित एवं तिरस्कृत मानी जाती थी। नासिरा शर्मा के शब्दों में, “तलाक शब्द अभी हथोड़े की तरह औरत की जिन्दगी पर इस तरह डूरबा था कि उसकी ओँकरों के आगे अंधेरा छा जाता था। उसकी बाकी जिन्दगी सामाजिक प्रताड़न सहने और जीने के संघर्ष में गुजर जाती थी। यह शब्द तब शाप था। लानत था। मगर अब मुक्ति का मंदिर है। मरने या बचने का उपाय है। संघर्ष में गुरुस्थी में बिना कारण होम हो जाने से निजात का रास्ता है।”

1.5.13 विज्ञापन के क्षेत्र में नारी

आधुनिक युग में विज्ञापन मास मीडिया का सशक्त औजार है। यह भूमंडलीकरण एवं आर्थिक उदारीकरण के तहत विज्ञापन ने सशक्त औजार का रूप ग्रहण किया। इथर उपभोक्ता आक्रामक एकीकरण और मुफ्त उपहार, मुद्रित-चित्रित या मीडिकल चिंताओं के तहत विज्ञापन आर्थिक प्रगति का मूर्तिरूप बना। आजकल विज्ञापन एक दिग्गजित समाज की संस्कृति का रूप पेश करता है। इस संदर्भ में डॉ. कुमुद शर्मा का मत उचित
है, “विज्ञापन विक्रय कला का एक भूमतापरक, नियंत्रित और निर्धारित अवस्थितिक संचार है, जिसमें उपभोक्ता या लक्षित जनसमूह के दृष्टि में रखकर मौखिक, लिखित तथा दृश्यात्मक सूचनाओं द्वारा विज्ञापनदानाओं के हक में जन-सहमति और जन-संस्कृति का आधार तैयार किया जाता है।” 86 सामाजिक समाज में सांस्कृतिक धरातल पर विज्ञापन सबसे गौरवपूर्ण और तर्कशील भूमिका अदा करती है। यहाँ विज्ञापन जीवन में तरक्की पाने का साधन मात्र रह गया। विज्ञापन फिल्मों के प्रचार में तथा माल वेबसे में अद्भूत उत्तेजना जाहिर की है।

आधुनिक युग में विज्ञापन और स्त्री का अलूट संबन्ध बना हुआ है। यहाँ स्त्री को केन्द्र में रखकर उसकी कामुक छवि द्वारा विज्ञापन एजेंसियाँ कमाते है। आज की मुक्त बाजार व्यवस्था में स्त्री देह और उसका सौंदर्य विज्ञापन-दाताओं के हक में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। स्त्री देह के बाजारीकरण के तहत विज्ञापन एजेंसियाँ अपने ग्राहकों की हित-साधनता में बल देता है। इस संदर्भ में मीनाक्षी निशांत सिंह का मत उल्लेखनीय है, “विज्ञापन कंपनियाँ अपने व्यवसायिक हितों की पूर्ति के लिए महिलाओं की श्रद्धा छवि को आदर्श के रूप में प्रतिस्थापित कर रही है। खास, पिया और मौज कसर यह नीति महिलाओं के लिए ही नहीं पूरे समाज के लिए भला घाटक है। उपभोक्तावाद व बाजारवाद ने हमारी ऑल्डों पर ऐसा चश्मा चढ़ा दिया है कि महिलाएं मात्र उपभोग की वस्तु
नजर आने लगी है। महिलाओं की बिकाऊ मालनुमा जो छवि बन रही है, उसमें आज के विज्ञापनों का बहुत बड़ा हाथ है।”६५ यहाँ नारी अपनी बौद्धिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक विकास के वजाय, सस्ते, कामुक एवं उपभोक्तावादी जाल में अटक जाती है। इस सिलसिले में स्त्री सौंदर्य की अवधारणा चावळ में उपभोग वस्तु के रूप में हुई। नारी की चेहरे की ताजगी, कोमलता तथा शरीरिक सौंदर्य के तहत विज्ञापन के चावळ में स्त्री के दाम लगाया जाता है। यहाँ नारी इसी दायरे में केवल रहने को मजबूर है।

1.5.14 मीडिया में स्त्री की छवि

परंपरागत नारी घर का शहरनाह में कैद थी। किन्तु मीडिया विस्फोट की इस युग में स्त्री की घरेलू छवि में वांछित बदलाव दृष्टिक आया। यहाँ नारी के तेवर बदलने में मीडिया ने अवश्य आसरा दिया। मीडिया ने नारी की चमकदार स्वतंत्र स्वरूप को दर्शाया है। मीनाक्षी निशांत सिंह के मत में, “मीडिया ने महिला जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन किए है। मीडिया के कारण महिलाओं में जागरूकता आई है। उनके जीवन-स्तर में गुणात्मक परिवर्तन आए हैं।”६६ मीडिया में स्त्री के दो रूपों की अवधारणा हुई है। यहाँ नारी ‘सामग्री’ और कर्मी के रूप में उभरती है। रिपोर्ट के क्षेत्र में नारी पुरुष दया का पात्र, रक्षिता तथा पीड़िता है। मनोरंजन के क्षेत्र में
यह दर्शन है। किन्तु नारी का यह स्वरूप उसे गृहजीवन की उत्पीड़न से रिहाई देती है। यहाँ फिल्म जगत की चकाचौड़ से प्रभावित नारी समस्त नैतिक मूल्यों को नकारती है।

वर्तमान युग में मीडिया में महिला पत्रकारों की आंकड़ा आशातीत रूप से बढ़ रही है। यहाँ नारी को पर्याप्त ओहदा है। इससे साक्षात्कार, जनसंपर्क और व्यक्तिगत पूछताछ में महिलाएं अधिक सहजता एवं दक्षता से अंजाम दे रही है। उद्धत मीडिया संस्थानों में रिपोर्टिंग के लिए महिलाओं को ही वरीयता देती है। इस संदर्भ में मीनाक्षी निसांत सिंह का मत समीचीन है, “रिपोर्टिंग में भी महिला पत्रकारों का दबदबा लगातार बढ़ता जा रहा है। टेलिविजन रिपोर्टिंग और एकरिंग में तो एक तरह से महिलाओं का वर्षभ्य स्थापित हो गया है।”

1.5.15 कानून एवं नारी

भारतीय संविधान ने औरतों की वृद्धि एवं विकास के उपलक्ष्य
में अनेक कानून एवं योजनाओं की गठन की है। इन योजनाओं ने नारी जीवन को काफी फेर बदला है। कानून के तहत विवाह, पुनर्विवाह, वधेज, तलाक, गर्भपात आदि नारी-पुरुष संबंधों से जुड़े हुए मूल्यों में परिवर्तन हुआ। केंद्रीय सरकार ने सन् १९७१ और १९७२ में दो महत्वपूर्ण कानून, गठत किये हैं। अनुच्छेद ३६ के अनुरूप समान रूप से नर-नारी एवं पूरी नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त का अधिकार तथा समकार्य के लिए समवेतन का अधिकार भी प्राप्त है। सन् १९२९ में बाल विवाह कानून के अन्तर्गत लड़के-लड़कियों की न्यूनतम आयु निर्धारित की गई है। हिन्दु उत्तराधिकार अधिनियम सन् १९६१ के तहत श्री को संपत्ति में अधिकार पाने का प्रावधान किया गया है। विशेष विवाह अधिनियम के अनुरूप लड़की के लिए १८ वर्ष का तथा लड़के के लिए २१ वर्ष निर्धारित की गई है। विशेष विवाह अधिनियम तथा हिन्दु विवाह अधिनियम १९५४ अव विवाह विच्छेद तथा न्यायिक पृथकता की अनुमति देते हैं। १९७६ के कानून में संशोधन के उपरान्त अवविवाह विच्छेद की अनुमति जीवन साधियों की सहमति के आधार पर दी जाती है। इससे नारी को अपने पति का तिरस्कार एवं उत्पीड़न से छुटकारा प्राप्त है। सन् १९६१ में पारित किए गए वधेज विरोधी अधिनियम के तहत वधेज देना और लेना अपराध है। १९६६ में कन्या भूण हत्या को रोकने के बास्ते ‘प्रीटेमल डायर्नोस्टिक टेस्टिंग एक्ट’ अधिनियम पारित किए। गर्भपात को वैधानिक मान्यता देनेवाले
एम.टी.पी के अनुसार गर्भवती स्त्री के जीवन को खतरा हो या होनेवाले बच्चे को विकृत होने की आशंका हो तो गर्भपात वैध है। कानून नारी जीवन की प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

स्वातंत्र्यातर कालीन हिंदी उपन्यास नारी मन के अतिसृष्टि एवं रहस्यभरी परतों के आलोचना संपूर्ण है। इसमें विधवा नारी की दुरंता, वहेज प्रथा की कठोरता और धार्मिक कठोरता से त्रस्त नारी जीवन का परिदृश्य प्राप्त है। यहाँ नारी को अधिकारियों और नौकरशाही से मानसिक एवं शारीरिक उत्पीड़न का सामना करना पड़ा। नारी पति का अविश्वास, बच्चों से अलग और स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का शिकार बनी। अतः घर और बाहर के दोहरी संघर्ष से त्रस्त नारी जीवन की सूक्ष्मभाविकता इस काल के उपन्यासों का मुद्रा रहा।

संदर्भ ग्रन्थ

1. आशारानी ब्योरा, भारतीय नारी दशा और दिशा, पृ. १८२
2. सौं. जे. एम देसाई, आधुनिक हिंदी काव्य में नारी, पृ. ९
3. डॉ. जयश्री गावित, उत्तरशती के उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी, पृ. २५
4. डॉ. शैल रसेमी, हिंदी उपन्यासों में नारी, पृ. २०
5. डॉ. अपर्णा पाटील, प्रेमचन्द के उपन्यासों में चित्रित नारी, पृ. ४२
6. डॉ. जयश्री गावित, उत्तर शति के उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी, पृ. ३२.
7. लज्जाराम मेहता शर्मा, सुशीला विधवा, पृ. ५५२
8. डॉ. जयश्री गावित, उत्तरशति के उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी, पृ. ३९-४०
9. आचार्य डॉ. हरिशंकर दुबे, महिला उपन्यासकारों की नारी: प्रमाण एवं पीड़ा के आयाम, पृ. 37-38
10. डॉ. जयश्री गावित, उत्तरश्ती के उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी, पृ. 43
11. वहीं, पृ. 44
12. डॉ. गणेश दास, स्वातंत्र्यात्म हिन्दी कहानी में नारी के विविध रूप, पृ. 71
13. डॉ. जयश्री गावित, उत्तरश्ती के उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी, पृ. 48
14. डॉ. घनश्याम भुजड़ा, समकालीन हिन्दी कहानियों में नारी के विविध रूप, पृ. 63
15. डॉ. हरिशंकर दुबे, महिला उपन्यासकारों की नारी: प्रमाण एवं पीड़ा के आयाम, पृ. 105
16. डॉ. बचनराव बोडके, बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक की कहानियों में नारी, पृ. 245
17. वहीं, पृ. 245
18. डॉ. छाया देवी घोरपडे, साड़ोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में परिवर्तित नारी जीवन मूल्य, पृ. 112
19. डॉ. हरिशंकर दुबे, महिला उपन्यासकारों की नारी: प्रमाण एवं पीड़ा के आयाम, पृ. 136
20. मनीषा, हम सम्भ और, पृ. 197
21. डॉ. एम. वैंकेटर, हिन्दी के समकालीन महिला उपन्यासकार, पृ. 221
22. डॉ. कृति मिश्रा, महिला उपन्यास लेखन एवं जीवन विमर्श, पृ. 86
23. प्रभा खेतान, स्त्री उपक्षिप्ता, पृ. 70
24. डॉ. जयश्री गावित, उत्तरश्ती के उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी, पृ. 25
25. डॉ. जयशंकर प्रसाद, सामाजिक उपन्यास और नारी मनोविज्ञान, पृ. 39
26. डॉ. शोभा वरेकर, हिन्दी उपन्यास नारी विमर्श, पृ. 14
27. डॉ. अमर ज्योति, हिन्दी उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारीवादी दृष्टि, पृ. 45
28. डॉ. बवनराव बोडके, बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक की कहानियों में नारी, पृ. 230
29. डॉ. नीलम मंजूरी गर्ग, साहित्यिक हिन्दी उपन्यास में नारी, पृ. 87
30. डॉ. हरिशंकर दुबे, महिला उपन्यासकारों की नारी: प्रगति एवं पीड़ा के आयाम, पृ. 160
31. नासिरा शर्मा, औरत के लिए औरत, पृ. 120
32. डॉ. प्रभुकुल कपूर, विवाह सेक्स और प्रेम, पृ. 36
33. डॉ. वंदना सोपानराव मोहिले, आठवें तथा नववें दशक के हिन्दी उपन्यासों में नारी, पृ. 84
34. अरविंद सहज सामान्तर कोश-शब्दकोश भी धिसरम भी, पृ. 106
35. दर्शन पाण्डेय, नारी अस्मिता की परख, पृ. 78
36. डॉ. शील रसैंगी, हिन्दी उपन्यासों में नारी, पृ. 9
37. डॉ. शीला रजवार, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य में नारी के बदलते संदर्भ, पृ. 16
38. डॉ. सुधा सिंह, अमृतराय का कथा साहित्य: मध्यवर्षीय जीवन, पृ. 65
39. डॉ. मुखदेव शुक्ल, हिन्दी उपन्यासों का विकास और नैतिकता, पृ. 308
40. डॉ. छायादेवी घोरपड़े, साहोत्तर हिन्दी उपन्यासों में परिवर्तित नारी जीवन मूल्य, पृ. 16
41. डॉ. हरिशंकर दुबे, महिला उपन्यासकारों की नारी: प्रगति एवं पीड़ा के आयाम, पृ. 125
42. तही, पृ. 125
43. डॉ. किरणधाल अरोड़ा, साहोत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी, पृ. 260
44. डॉ. रोहिणी अग्रवाल, हिन्दी उपन्यासों में कामकाजी महिला, पृ. 112
45. नासिरा शर्मा, औरत के लिए औरत, पृ. 162
46. डॉ. कुमुद शर्मा, विज्ञापन की दुनिया, पृ. 16
47. मीनाक्षी निशांत सिंह, महिला सशक्तिकरण की सच, पृ. 92
48. यही, पृ. 88
49. यही, पृ. 88